दकन का ऐतिहासिक भूगोल

डॉ. नवीन गिडियन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - इतिहास विभाग
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

दकन शब्द का प्रयोग उस ऐतिहासिक भूमि के लिए किया जाता है जिसका विस्तार सह्याद्रि पर्वत से लेकर दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा तक और पश्चिम में अरब सागर से पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक है। सह्याद्रि को ही सातमाल, चांदोर, अजंता या इंध्याद्रि पहाड़ी भी कहते हैं। यह पहाड़ी उस पठार के जरिए महेन्द्रगिरि से जुड़ी हुई है जो महानदी और गोदावरी के बीच जलविभाजक (वाटरशेड) का काम करता है।

उपर्युक्त भूभाग मोटे तौर पर 13°59' और 20°33' उत्तर अक्षांश और 72°54' और 8°26' पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसमें मराठावाड़ा और बंबई प्रेसिडेन्सी के कन्नड़भाषी इलाके, हैदराबाद राज्य, बरार का दक्षिणी भाग, मध्यप्रदेश के समीपवर्ती कुछ जिले, महेन्द्रगिरि और कृष्णा नदी के बीच के उड़ीसा और मद्रास प्रेसिडेंसी के कुछ भाग शामिल हैं। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 2 लाख वर्गमील और आवादी लगभग 4 करोड़ है।

दकन संस्कृत के 'दक्षिण' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है दाहिना हाथ या दक्षिण दिशा। यह नाम भारतीय साहित्य और अभिलेखों में प्रचलित था। 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' में इस नाम का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ की रचना पहली शताब्दी में एक यूनानी नाविक ने की थी। पाँचवीं शताब्दी में फाहियान ने 'त-श्सिन' के रूप में इसका उल्लेख किया है। इसी नाम के रूप हैं - दक्षिणात्य और दक्षिणाशा, किंतु क्लासिकल संस्कृत साहित्य और अभिलेखों में इसका सबसे प्रचलित नाम दक्षिणापथ था।

अति प्राचीन काल से विभिन्न अर्थों में इस नाम का प्रयोग हुआ है। विस्तृत अर्थों में यह उस समस्त भूभाग का नाम है जो विंध्य और दक्षिण समुद्र के बीच स्थित है - 'दक्षिणस्य समुद्रस्य तथा विंध्यस्य चांतरे'। 'भरत नाट्यशास्त्र'[1] और 'पुराणों' के 'भुवनकोश' भी इस अभिधान से परिचित हैं। 'मत्स्यपुराण'[2] उत्तर में इसकी सीमा कारूप तक बतलाया है। कारूष पूर्वी विन्ध्य की कैमूर पहाड़ियों के इर्द-गिर्द का पहाड़ी इलाका था। पालि 'जातक' के अनुसार यह पश्चिमी विंध्य के पास अवंति तक फैला था। 'पेतुवत्थु टीका'[3] में तो दकन के अंदर दक्षिण में दमिल 'विषय' अर्थात् तमिल प्रदेश भी था। समुद्रगुप्त के प्रशस्तिकार हरिषेण ने दक्षिणापथ में महानदी घाटी से काँची तक का समस्त प्रदेश शामिल किया है। उसने दक्षिण में महाकांतार को भी शामिल किया है। यह महाकांतार ठीक-ठीक कहाँ था इसका निश्चय अभी तक नहीं हो पाया है। अतः यह बतलाना कठिन है कि हरिषेण दकन की उत्तरी सीमा कहाँ तक मानता था। राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में दक्षिणापथ को माहिष्मती और नर्मदा के परे वतलाया गया है। परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में दक्षिणापथ की परिभाषा थी - 'सेतु नर्मदा मध्यम दक्षिणापथम्' (दकन रामेश्वरम के सेतु से नर्मदा तक फैला है)। यह भी मूलतः भिन्न नहीं है।

इससे काफी पहले अर्थात् ईसा की पहली शताब्दी में 'पेरिप्लस' ने 'दचिनाबेडीज' अर्थात् दक्षिणापथ

शब्द का इस्तेमाल बेरीगाजा अर्थात् नर्मदा के तट पर भड़ोच से परे के प्रदेश के लिए किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें दमिरका अर्थात् द्रविड़ प्रवेश को शामिल नहीं किया गया है। इस ग्रंथ में लिखा है कि बेरीगाजा से परे सटा हुआ समुद्रतट सीधी रेखा में उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है, इसलिए इस प्रदेश को 'दचिनाबेडीज' कहते हैं क्योंकि स्थानीय भाषा में 'दचनोस' का अर्थ दक्षिण होता है। इस क्षेत्र की मंडियों में पैठन और तगर (तेर या थेर), जो इस समय हैदराबाद में है, प्रसिद्ध थीं। 'दरिमरिका' के बाजारों का अलग से उल्लेख हुआ है।

'रामायण'-'महाभारत' दोनों की महाकाव्यों में संभवतः दक्षिणापथ में सुदूर दक्षिण को शामिल नहीं किया गया है। 'रामायण' में द्रविड़ों को दक्षिणापथ से पृथक् रखा गया है।[1] 'महाभारत' में सहदेव सुदूर दक्षिण में पांड्य के राजा को हराने के बाद दक्षिणापथ के राजाओं को जीतते हैं।[2] संभवतः किष्किंधा गुहा (तुंगभद्रा के पास) उस समय दक्षिणापथ के उपांत में थी। उत्तर में इसका विस्तार विदर्भ या बरार तक था -

'एष पंथा विदर्भाणां असौ गच्छति कोसलान्।
अतः परंच देशोऽयं दक्षिणे दक्षिणापथः।।'[3]

(यह रास्ता विदर्भ (बरार) को जाता है और वह कोसल प्रदेश (महानदी की ऊपरी घाटी) को उसके परे दक्षिण में दक्षिणापथ है)।

प्राकृतिक विभाग

भौगोलिक दृष्टि से देश के तीन प्राकृतिक विभाग हैं - (1) उठा हुआ त्रिभुजाकार पठार जिसके उत्तर में सातमाल की पहाड़ियाँ और पश्चिम और पूरब में क्रमशः पश्चिमीघाट और पूर्वी घाट हैं, जो समुद्र तट से समांतर चलते हैं और नीलगिरि में एक गाँठ की भाँति जुड़ जाते हैं, (2) अरब सागर और पश्चिमी-घाट के बीच का संकरा सा मैदान और (3) उससे कुछ चौड़ा पूर्वीघाट और बंगाल की खाड़ी के बीच का निचला मैदान।

विशाल मध्य अधित्यका समुद्र से 1000 से 3000 फुट ऊँची है। इसमें उन स्थानों पर जहाँ नदियों की घाटियाँ हैं, अवनमन हैं। इसमें यत्र-तत्र पहाड़ियाँ और पर्वतस्कन्ध हैं जिनकी ऊँचाई 2500 फुट है। कहीं-कहीं तो ये 3500 फुट ऊँची भी हैं। पश्चिम की ओर ये अधिक ऊँचे हैं। पश्चिमी घाट से मद्रास प्रेसिडेंसी में समुद्रतट की ओर इनकी ऊँचाई बराबर घटती गई है। इस पठार में भूगोल और भाषा की दृष्टि से अलग-अलग विभाग हैं। गोदावरी नदी और उसकी सहायिका मंजरा उत्तर पश्चिम के अत्युर्वर वनस्पतियों से भरे ट्रेप क्षेत्र को जिसमें मुख्य रूप से मराठे रहते हैं, उस ग्रेनाइट और केल्सियम वाले प्रदेश से अलग करती है जिसमें नंगी चट्टानें और बलुआ मिट्टी है और जो मुख्य रूप से तेलुगुभाषियों का इलाका है। पठार का 'धारवाड़ी चट्टानों' वाला दक्षिण पश्चिम भाग एक तीसरा प्रदेश है जिसे कन्नड़, कर्णाट या कर्नाटक कहते हैं। यहाँ की भाषा कन्नड़ है। इस प्रदेश को बीदर से कारवाड़ तक एक लहरदार रेखा मराठवाड़ा से और बीदर से अडोनी तक एक दूसरी रेखा तेलंगान से अलग करती है। इस प्रदेश के नाम की व्युत्पत्ति कभी-कभी कार=काला, नाडु=देश अर्थात् काला देश से करते हैं। यह शब्द यहाँ की कपास की काली मिट्टी के लिए बड़ा उपयुक्त है 'कृष्णभूमि क्षेत्र, विख्यातकृष्णवर्ण विषय' अपनी काली मिट्टी के लिए दकन का यह प्रदेश युगों से प्रसिद्ध रहा है। इस भूमि को जो नदी सींचती है उसका कृष्णा, कृष्णवर्णा या कृष्णवेणी नाम उपयुक्त ही है।

अरब सागर या पश्चिम समुद्र से लगी सँकरी निचली भूमि की चौड़ाई तीस से साठ मील तक है। यह

एक ऊबड़-खाबड़ प्रदेश है। इसे पश्चिमीघाट के पर्वतस्कंध जहाँ-तहाँ तोड़ते हैं, छोटी-छोटी नदियाँ इसे स्थान स्थान पर काटती हैं, सँकरी खाड़ियाँ और लघु निवेशिकाएँ इसे टेढ़ी-मेढ़ी रेखा पर काटती हैं। कहीं-कहीं दृश्य मनोरम हैं, चट्टानी लघुद्वीप और अंतरीप हैं, बालू के पुलिन हैं जिनके किनारे नारियल वृक्षों की पंक्तियाँ हैं, धान के लहलहाते खेत हैं, विशाल मुहाने हैं जो फैलकर झीलों की तरह के बेलासंगम बन गए हैं। प्राचीन काल में इस तट पर अनेक पोत्राश्रय और पण्यनगर थे। ये प्राचीनकाल में भारत की शक्ति और समृद्धि के सूचक थे।

पर्वत

दकन का स्वरूप मुख्य रूप में उसकी पर्वत श्रंखलाओं पर निर्भर है। पश्चिम में पश्चिमी-घाट है। यह सात 'कुलपर्वतों' में एक है। प्राचीन लेखकों ने इसे सह्याद्रि कहा है। इसका उत्तरी भाग सातमाल, जिसे सह्याद्रि पर्वत भी कहते हैं, एक पर्वतस्कंध मात्र है। पश्चिमीघाट एक लंबी दीवार जैसा है जिसके अधिकांश भाग की ऊँचाई लगभग 4000 फुट है। सह्याद्रि के किलानुमा शिखरों ने दक्षिण भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन पहाड़ियों को बहुत से दर्रे स्थान-स्थान पर काटते हैं। घाटों के पीछे के पठार और पश्चिमी समुद्रतट के बंदरगाहों के बीच ये दर्रे आवागमन के मार्गों का कार्य करते हैं।

पश्चिमीघाट की जो मुख्य श्रंखला है उसमें से बहुत से पर्वतस्कन्ध निकले हैं। ये पश्चिम से पूरब में मीलों तक मध्य अधित्यका के पार प्रायद्वीप के भीतर घुस गए हैं। ये बड़ी-बड़ी नदियों के बेसिनों को एक दूसरे से अलग करते हैं। प्राचीन काल में ये विभिन्न जनपदों की सीमारेखा भी बनाते थे। इनमें सबसे महत्व की पट्टी वह है जो ताप्ती और गोदावरी की घाटियों को अलग करती है। यह दकन के पठार की उत्तरी दीवार है। इसका नाम सह्याद्रि पर्वत है। यह नाम इसे उस मूल पर्वत से ही मिला है जिसकी यह शाखा है। सह्याद्रि से यह शाखा नासिक से उत्तर-पश्चिम में समकोण बनाती निकलती है। इसे चांदोर, सातमाल, इंध्याद्रि या अजंता की श्रंखला भी कहते हैं। अजंता नाम उसी नाम के उस गाँव के कारण पड़ा है जो हैदराबाद रियासत के औरंगाबाद जिले में भोकरदन तालुक में पड़ता है। यह गाँव पर्वतों को काटकर बनाई गई ऐसी गुफाओं के कारण प्रसिद्ध है जिनमें सुंदर भित्तिचित्र बने हैं। वे तत्कालीन चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं। अजंता की पहाड़ियाँ यवतमाल में छिटपुट शिखरों और पर्वतस्कन्धों को तोड़कर घुस गई हैं। ये आगे जाकर उस पहाड़ी और पठार की चौड़ी पट्टी से होकर गुजरती हैं जो महानदी के बेसिन को गोदावरी के बेसिन से अलग करती हैं और अंततोगत्वा पूर्वी घाटों में विलीन हो जाती हैं।

सह्याद्रि का एक दूसरा स्कन्ध जलना की पहाड़ियों के नाम से विख्यात है। यह देवगिरि अथवा दौलतावाद के किले से जलना तक फैला है और उसके बाद बरार तक चला गया है। यह प्राचीन काल में भोगवर्धन (भोकरदन) और मूलक (पैठन के आसपास का जिला) जनपदों की सीमा का काम करता था। यह उस पठार का अंचल था जिसके एक कगार में पत्थर काटकर अनेक मंदिर और एलोरा की गुफाएँ बनी हैं। एक तीसरी श्रंखला अहमदनगर पहाड़ियों की है। हैदराबाद रियासत की बालाघाट श्रेणी को इसी का विस्तार मान सकते हैं। यह श्रंखला सह्याद्रि पर स्थित हरिश्चंद्रगढ़ (समुद्रतल से 4691 फुट ऊँचा) से अहमदनगर और भीर होती हुई बिलोली तक जाती है। इससे एक पर्वतस्कन्ध निकलता है जो अस्टि से गुलबर्ग तक जाता है और

गोदावरी और सीना के बीच जलविभाजक का काम करता है। सीना भीमा की सहायक नदी है, जबकि भीमा स्वयं कृष्णा में मिलने वाली प्रसिद्ध नदी है।

अंत में, महादेव की पहाड़ियाँ हैं जो महाबलेश्वर से 10 मील उत्तर से प्रारंभ होकर पूरे सतारा जिले को पार करती हैं। इसी पहाड़ी का एक स्कंध कृष्णा और उसकी सहायिका वस्ना के बीच जलविभाजक का काम करता है। महादेव पहाड़ियों के दक्षिण में करहाटक का प्राचीन प्रदेश था जिसे आज कराड कहते हैं और उत्तर में पूणक (पूना) और पल्यट्ठाण (फल्टक) के प्रसिद्ध विषय (जिले या तालुक) थे।

दकन का पूर्वी पार्श्व (जिसका रुख बंगाल की खाड़ी की ओर है) पूर्वीघाट के नाम से विख्यात है। गौतमीपुत्र सातकर्णि की नासिक की प्रशस्ति में सह्य (पश्चिमीघाट का उत्तरी भाग), कण्हगिरि (कृष्णगिरि, आधुनिक कण्हेरी, जो ठाणा जिले में है) और प्रायद्वीप के अनेक पर्वतों के साथ महिंद (संस्कृतः महेन्द्र) का भी उल्लेख आया है। 'पुराणों' में इसकी गणना 'कुलपर्वतों' में की गई है। यह पर्वत गंजाम जिले में महेन्द्रगिरि अथवा महेन्द्राचल से शुरू होकर कुलक्काल पहाड़ियों तक जाता है। कुलक्काल का भी नाम महेन्द्रगिरि है। यह मद्रास प्रेसिडेंसी के तिन्नेवेली जिले में है। पूर्वीघाट पश्चिमीघाट की भाँति अखंड दीवार नहीं है। गोदावरी और कृष्णा और अन्य नदियाँ जो पश्चिम से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं इसे काटती हैं। कई श्रंखलाओं में यह समुद्रतट की रेखा के समांतर दक्षिण की ओर चला गया है, जहाँ यह सह्याद्रि से जुड़ जाता है। इस जोड़ या गाँठ का नाम नीलगिरि है जो दकन के पठार का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर है। यह मिलन तुंगभद्रा-कृष्णा नदियों से काफी आगे होता है। जो हमारे दकन की दक्षिणी सीमा रेखा है। रायचुर दोआब की पहाड़ियाँ इस सीमा पर पहरा देती हैं। पार्जिटर ने मालयवंत की पहचान इससे की है। अन्य विद्वान इसे ऋष्यमूक बताते हैं। यही अधिक संभव भी है, किन्तु इस दक्षिणी सीमा की महत्वपूर्ण पहाड़ी कृष्णा के दक्षिण कुर्नूल जिले में है। प्रसिद्ध श्रीशैल यहीं है। रुद्रदेव के हनमकोंड अभिलेख में इसे ही तेलिंगान के काकतीयों के राज्य की सीमा बतलाया गया है।

वन

दकन के पर्वत और वन, विशेषकर ट्रेप क्षेत्र में, प्रायः उर्वर वनस्पतियों से ढँके हैं। आदियुगीन वन गोदावरी के पूरब में हैं। हैदराबाद रियासत का प्रचुर क्षेत्र जंगली पेड़ों से भरा है। वारंगल जिले की पाखाल झील के आसपास के घने जंगलों के बारे में कहा जाता है कि 'एक गिलहरी पाखाल के पास एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाकर भद्राचलम तक पहुँच सकती है।' तुंगभद्रा के ऊपरी रीच में मलेनाड अर्थात् 'पहाड़ी प्रदेश' में विशाल तनों वाले वृक्ष हैं जिन्हें अजगर की तरह मोटी लताएँ घेरे रहती हैं, इनकी भुजाएँ हजारों खिले आर्किडों से सुशोभित रहती हैं। विरली पक्षतियों वाले पक्षी एक शाखा से दूसरी शाखा पर फुदकते रहते हैं। अरने भैंसे और ऋष्यों (हिरनों) के झुंड वनस्पतियों की कोंपलें चरते रहते हैं जो यहाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। जंगलों में लंगूरों की किलकिलाहट गूंजती रहती है। ये वन बस्तर से ही शुरू हो जाते हैं और गोदावरी के किनारे-किनारे सेउण प्रदेश तक चले जाते हैं। सेउण में दौलताबाद का क्षेत्र और नासिक का एक हिस्सा शामिल था। अभिलेखों और हेमाद्रि के 'व्रतखंड'[7] में उन्हें प्रसिद्ध दंडकारण्य के अवशेष माना गया है। दंडाकारण्य 'रामायणकाल' में गोदावरी और पंपा अर्थात तुंगभद्रा की घाटियों को आवृत किए हुए था। 'चित्र प्रशस्ति' में गोदावरी के तट पर

एक वनस्थली का स्पष्ट उल्लेख आया है। 'महाभारत के 'वनपर्व' में 'सप्तगोदावर' के बाद तुंगकारण्य का उल्लेख आया है।[8]

झीलें

दकन में झीलों की संख्या इसके विस्तार को देखते हुए अधिक नहीं है। 'रामायण' में पंचाप्सरोतटक (पाँच अप्सराओं की झील) और पंपासरस का उल्लेख आया है। 'पंचाप्सरोतटक' का मांडकर्णि या सातकर्णि के साथ उल्लेख आया है[9] और पंपासरस पंपासागर ही है। यह नाम तुंगभद्रा के किनारे बेल्लारी जिले के हुविहनदगल्लि तालुक में हंपसागर के रूप में आज भी सुरक्षित है। कुलोत्तुंग चोडदेव द्वितीय के चेल्लूर के ताम्रपट्टों[10] में वेंगिमंडल में 'महासरस' का उल्लेख आया है। पृथवीश्वर के पिठापुरम् अभिलेख में भी इसका उल्लेख है।[11] कीलहार्न के अनुसार यह और 'जलम कौनालम'[12] कृष्णा और गोदावरी के मध्य प्रसिद्ध कोलेरू या कोलेर झील ही है। चिल्का समुद्र नाम से विख्यात लैगून[13] और पुलिकट का लैगून दोनों हमारे दकन की सीमा के बाहर पड़ते हैं, किन्तु हैदराबाद रियासत की सीमा के भीतर और अन्य जगहों में सिंचाई के लिए बड़े-बड़े जलाशय बनाए गए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वारंगल जिले की पाखाल और रामप्पा की झीलें हैं। इनके अलावा कुत्बशाही बादशाहों और उनके बाद आसफ जाह खानदान ने भी बड़े-बड़े सागर या विशाल जलाशय बनवाए थे। पाखाल झील का निर्माण पाखाल नदी पर, जहाँ वह दो पहाड़ियों को काटती थी, बाँध बाँधकर किया गया है। यह जलाशय लगभग 13 वर्ग मील घेरे में है। इसी झील से मुनेर नदी निकलती है जो कृष्णा नदी में मिल जाती है। गार्ला अभिलेख की मौद्गल्य नदी संभवतः यहीं है। करीमनगर के परकाल तालुक में रामप्पा झील के आसपास बहुत से मंदिर बने हैं। ये उसी शैली के हैं जिसमें हनमकोंड का मंदिर बना है, किंतु इनमें प्रतिमाओं की सजावट बहुत अधिक है।

नदियाँ

पश्चिमी-घाट से दकन का पठार ढलान के रूप में मद्रास के समुद्रतट की ओर गिरता गया है। इसलिए सभी जलप्रवाह पश्चिम से पूरब की ओर ही हैं। जलप्रवाह की दो मुख्य रेखाएँ हैं जो दो नदी जालों के रूप में प्रवहमान हैं। एक नदी जाल गोदावरी और उसकी सहायक नदियों का है और दूसरा कृष्णा और उसकी सहायक नदियों का।

गोदावरी का शाब्दिक अर्थ है 'जल या गौ को देने वाली'। क्रुक का मत है कि यह द्रविड़ शब्द 'गोद' (तेलुगु 'गोदे') = सीमा का संस्कृत रूप है। यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह दक्षिणापथ को दो भागों में विभाजित करती है[14] एक उत्तर का ट्रेप क्षेत्र और दूसरा दक्षिण का ग्रेनाइट और केल्सियम का प्रदेश।

भारत की पवित्र नदियों में गोदावरी का बड़ा उच्च स्थान है। दक्षिण-निवासी इसे गंगा या गौतमी गंगा के नाम से पुकारते हैं और इसे आर्यावर्त की भागीरथी गंगा के सदृश ही मानते हैं। 'ब्रह्मपुराण' के 'गौतमी माहात्म्य' से उसकी पवित्रता की पुष्टि होती है। इस नदी का एक स्रोत त्रिंबक संस्कृत 'त्र्यंबक' (शिव) के तीर्थ से निकलता है। यह नासिक जिले में अरब सागर के करीब पचास मील दूर पड़ता है। यहाँ एक ऊँची चट्टान से पत्थर के 'गोमुख' में से पानी नीचे गिरता है। त्रिंबक और ब्रह्म पर्वत को जोड़ने वाले पर्वतस्कन्ध से एक उससे बड़ी धारा निकलती है। पवित्र त्रिंबक की सीमा को पार करने पर घाटमाथ प्रदेश से होकर यह नदी एक पहाड़ी

शय्या को गहराई में काटती है फिर गंगापुर के झरने के रूप में गिरने लगती है। फिर अनेक कुंडों से गुजरती नासिक के नगर से होती हुई यह नदी आगे चली जाती है। ये कुंड तीर्थस्थान माने जाते हैं जहाँ लोग स्नान कर पुण्य का अर्जन करते हैं। नासिक को ही 'रामायण' की पंचवटी बताया जाता है। इसके पैठन पहुँचने से पहले काद्रवा (कदवा) और प्रवरा आदि कई नदियाँ इसमें मिल जाती हैं। पैठन ईसा की दूसरी शताब्दी में पुलुमावि की राजधानी था। पठन से यह हैदराबाद रियासत में बहती हुई आगे चली जाती है। फिर बाईं ओर से पूर्णा और दाईं ओर से मंजा इसमें मिल जाती है। मंजा 'वायुपुराण' की वंजरा और 'मत्स्यपुराण' की वंजुला है। मराठ और तेलुगु प्रदेश की सीमा यही नदी बनाती है। इससे और आगे प्रान्हिता नदी पेनगंगा, वर्धा (वरदा) और वैनगंगा (वेण्वा) के सम्मिलित जल के साथ इसमें मिलती हैं। यहाँ से इस नदी का बहाव स्पष्ट ही दक्षिण-पूरब को हो जाता है। फिर यह प्राचीन चक्रकूट को आंध्र या तेलिंगान से अलग करती है। चक्रकूट आधुनिक बस्तर है और अन्मकोंड (हनमकोंड) आंध्र का आभूषण ('अंध्रावणिमंडल') था। प्रान्हिता के संगमस्थल से करीब 30 मील नीचे बस्तर रियासत से आकर इंद्रवती गोदावरी में मिलती है। फिर भद्राचलम से होती हुई यह आगे बढ़ती है। रामायण के अनुसार राम ने अपने वनवासकाल में भद्राचलम में निवास किया था। भद्राचलम से आगे शबरी नदी इसमें मिलती है। यह नाम किसी वन्य जाति का है जिसका उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भी आया है। अब इसके बाद यह नदी पूर्वीघाट में प्रवेश करती है और राजामुंद्री (राजमहेन्द्रपट्टण) से होकर आगे बढ़ती है। फिर इसमें चौड़ी-चौड़ी रीचें और स्थान-स्थान पर जलोढ़ द्वीप बन जाते हैं जिन्हें 'लंका' कहते हैं। फिर सात शाखाओं में ('सप्तगोदावरी') बँटकर यह समुद्र से जा मिलती है।[15] इन शाखाओं के नाम हैं वाशिष्ठी (पश्चिम में), वैश्वामित्री, वामदेवी, गोमती, भारद्वाजी, आत्रेयी और जामदग्नी। इनमें गोतमी जो पूरब में पड़ती है सबसे पवित्र मानी जाती है।

कृष्णा का नाम संभवतः उस काली मिट्टी 'कृष्णभूमि', 'करेनाडु' के कारण पड़ा है, जिसका यह सिंचन करती है। यह अरब सागर से करीब 40 मील की दूरी पर महाबलेश्वर के पठार की पूर्वी भृकुटी से निकलती है। इसका उद्गम सतारा से करीब तैंतीस मील दूर सह्याद्रि के एक पर्वतस्कन्ध में है। इसलिए प्राचीन अभिलेखों में इसे सह्यजा या सह्यपुत्री भी कहा गया है। एक धारा के रूप में यह एक गोमुख से शिव के एक प्राचीन मंदिर पर गिरती है।

कृष्णा की लंबाई गोदावरी से कम ही है। यह करीब 800 मील लंबी है जबकि गोदावरी 900 मील लंवी है, किन्तु कृष्णा और उसकी सहायिकाओं, भीमा और तुंगभद्रा आदि का बेसिन गोदावरी के बेसिन के करीव-करीव वरावर ही है। कृष्णा के बेसिन का क्षेत्रफल लगभग 95000 वर्ग मील और गोदावरी के बेसिन का क्षेत्रफल 1,12,000 वर्ग मील है।

यह नदी पहले पूरब और दक्षिण की ओर बहती है फिर मुड़कर दक्षिण-पूरब की दिशा में बहने लगती है। सतारा से करीव तीन (3) मील दूर पूरब माहुली में वेणा या येन्न नदी इसमें मिलती है। फिर कराड से होती हुई यह आगे वढ़ती है, जहाँ दाईं दिशा से आकर कोइना इसमें मिल जाती है। कराड 'महाभारत' का करहाटक है। सांगली से करीब 3 मील दक्षिण में वर्णा इसमें मिलती है। वेणा और प्रत्यक्षतः वर्णा के संगम के कारण यह कई नाम धारण करती है, जैसे - कण्हवेम्णा, कृष्णवेण्णा, कृष्णबेण्णा, कृष्णवेणा, कृष्णवेणी, कृष्णवेर्णा और कृष्णवर्णा। इसे ही कभी-कभी संक्षेप में वेर्णा या वेणी भी कहते हैं। 'पुराणों' में इसके वेणिका और कृष्णवेणिका नाम भी आए हैं।

बिजापुर जिले में पश्चिमीघाट से दो सरिताएँ घाटप्रभा और इतिहास प्रसिद्ध मलप्रभा कृष्णा में मिलती हैं। इसका पानी एक चट्टान से दूसरी चट्टान से टकराकर हवा में फुहारों का स्तंभ बनाता है और तंग घाटियों के पदतल में गिरकर प्रचंड खड्ड बना देता है। शोरापुर और रायचुर के प्रसिद्ध दोआबों तक पहुँचने के बाद यह हैदराबाद रियासत में पहुँचती है और फिर उस पठार से नीचे उतरती है जिसमें से रास्ता बनाती यहाँ तक आई थी। इसमें शोरापुर का दोआब भीमा के संगम से बना है। भीमा सह्याद्रि से पूना जिले में भीमाशंकर के मंदिर के पास से निकलती है और पंडरपुर के प्रसिद्ध तीर्थ से होती हुई जाती है। इसकी सहायिकाओं में इंद्रायणी, मुलमुथा, नीरा, सीनी और काम्ना प्रसिद्ध हैं। इंद्रायणी देहू और आलंदी से होकर आती है। देहू को तुकाराम ने पवित्र माना था और आलंदी ज्ञानेश्वर का जन्मस्थान था। मुलामुथा के किनारे पूना बसा है, नीरा भोर रियासत में उस पर्वतस्कन्ध का प्रक्षालन करती है जिसकी चोटी पर तोर्ना है, सीनी अहमदनगर से होकर गुजरती है और काम्ना कभी मान्यखेट के प्रसिद्ध महानगर से होकर बहती थी। रायचुर दोआब कृष्णा और दक्षिण की गंगा तुंगभद्रा के संगम से बना है।[16] यह संगमस्थल आलमपुर से अधिक दूर नहीं है। यह आलमपुर संभवतः गुर्जला के प्राचीन प्राकृत अभिलेख में उल्लिखित हलमपुर है। तुंगभद्रा दो सरिताओं, तुंग और भद्रा से मिलकर बनी है। ये मैसूर के कडूर जिले की सीमा के पास वराह पर्वत में गंगामूल से निकलती है। तुंग श्रंगेरी (श्रृष्यश्रंगगिरि) से होकर गुजरती है और भद्रा से मिलने के बाद हरिहर, हंपी (प्राचीन पंपक्षेत्र जहाँ विजयनगर था), आनेगुंडि (कुंजरकोण, प्राचीन भूगोल लेखकों का हाथी का कोना) और आलमपुर से होती हुई उससे थोड़ी दूर आगे कृष्णा में मिल जाती है। तुंगभद्रा के जल से पूर्ण हो जाने के बाद कृष्णा श्रीशैलम पहुँचती है जहाँ उसे पाटलगंगा कहते हैं।[17] श्रीशैलम से पहले ही उसमें हैदराबाद की मुसी और पाखाल झील से निकलने वाली मुनेर (मौद्गल्य) मिलती है। फिर धान्यकटक-अमरावती नगरों के और विजयवाटिका (बेजवाड़ा) के बीच के इतिहास प्रसिद्ध प्रदेश से होती हुई कृष्णा दो शाखाओं में बँटकर समुद्र से मिल जाती है। इन दोनों शाखाओं के बीच वह एक विस्तृत डेल्टे का निर्माण करती है।

प्राकृतिक वैशिष्ट्य का इतिहास पर प्रभाव

किसी देश के इतिहास पर उसके भूगोल का बड़ा प्रभाव पड़ता है। दकन की प्राकृतिक विशिष्टता - इसके पर्वतों, वनों, नदी प्रणालियों ने इसके इतिहास को खूब प्रभावित किया है। इसके उत्तर में पर्वत और जंगल हैं। इन्होंने सिंध और गंगा के मैदानों से इसकी घेरेबंदी की थी। इनके कारण दकन की अपनी अलग दुनिया थी। उसकी अपनी सामाजिक, मानवजातीय और सांस्कृतिक विशिष्टताएँ थीं जैसा कि बोधायान के 'धर्मसूत्र', भरत के 'नाट्यशास्त्र' और वाण के 'हर्षचरित' से प्रकट है,[18] किन्तु ये पर्वत और वन उसे उत्तर के प्रभावों से अभेद्य न रख सके। राजपथों की कमी या यात्रा के संकट ऋषियों और मुनियों को जंगलों के खतरों को झेलकर उस प्रदेश में जाने से न रोक सके और उन्होंने दकन में जाकर शान्ति और सदाचार के संदेश सुनाए और वहाँ के निवासियों का नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति में हाथ बँटाया। ये बाधाएँ धन की खोज में निकलने वाले सार्थवाहों और व्यापारियों को भी विचलित न कर सकीं। गोदावरी और उसकी सहायक नदियों को ऊपर से देखती पहाड़ियों के परकोटों को छेदती सँकरी घाटियों और दर्रों की राहों से कभी-कभी आक्रामक सेनाओं के झुंड के झुंड इन वनों और पर्वतों में घुसते रहे।

सह्याद्रि जो पश्चिमी समुद्रतट से ऊँचे कगारों के रूप में ऊपर उठता है और जिसमें से पठार के मध्य में अनेक पर्वतस्कंध निकलते हैं, नदियाँ जो बरसात के मौसम में बड़े वेग से उफनती हैं, दुर्गम वन जो अनेक पर्वतों को आच्छादित किए हुए हैं और विभिन्न स्थानों पर नदी-घाटियों को ढँके हुए हैं, इन सबने इस भूभाग को चीरकर अगणित राजनीतिक टुकड़ों में बाँट दिया था। इनके बहुरूपदर्शी परिवर्तनों और संगठनों पर नियंत्रण रखना कठिन था। अनेक पहाड़ियों के शीर्ष भागों में चट्टानों की दीवारें हैं जो इनको सहज ही अभेद्य दुर्गों में परिणत कर लेते थे। इस प्रकार यदि कोई सत्ता प्रायद्वीप को घेरे तीनों समुद्रों ('ति-समुद', अंबुधित्रय') पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहती तो उन दुर्गों से सहज ही उसका प्रतिरोध संभव था। यह विशाल पठार खनिजों और कृषि-संपत्ति से समृद्ध है। इसके पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतटों पर अनेक बंदरगाह हैं जिनके जरिए विदेशों से खूब व्यापार होता था जिससे इस भूभाग की संपन्नता में और भी वृद्धि होती थी। अस्तु, इस भूभाग में यदाकदा ऐसे विशाल साम्राज्यों की भी स्थापना हुई जिनकी शक्ति और शानशौकत सिंध और गंगा के मैदानों के किसी साम्राज्य से घटकर न थी। नर्मदा और गोदावरी की घाटियों के प्रवेशमार्गों की रक्षा करने वाली पहाड़ी बुर्जों और दुर्गम वनों ने कई बार उत्तर के आक्रामकों को वापस भेज दिया था। दक्षिण में रायचुर के 'दोआब' प्राचीन अभिलेखों[19] का एडेदोरेनाड और दक्षिणा पूर्व के 'दो नदी-जिलों' (सिंधुयुग्मान्तरदेश) की रक्षा करने वाली पहाड़ियों और वनों की अविच्छिन्न श्रंखला नहीं है। इसलिए आक्रमण की दृष्टि से उत्तरी भागों की अपेक्षा ये प्रदेश अभेद्य न थे। जब तुंगभद्रा और कृष्णा के दोनों किनारों पर दाँतों को कटकटाती सेनाएँ एकत्र हो जाती थीं तो यह भूमि प्रायः रक्त से लाल हो जाती थी, किन्तु कोप्पल आनेगुंडि, मुदल, रायचुर, देवरकोंड और नलगोंडा के दुर्ग सहसा आक्रमणों को रोकने के लिए दीवार का काम करते थे। चट्टानों के घेरे में सुरक्षित 'दक्षिणापथपति' की गणना संसार के ऊँचे से ऊँचे राजाओं में होती थी। उन्होंने इस भूभाग को विशाल मंदिरों से सजाया। पहले ये मंदिर पहाड़ी चट्टानों को ही काटकर बनाए जाते थे और उन्हें सुंदर चित्रों और प्रतिमाओं से अलंकृत किया जाता था। ये मंदिर आज भी भारत के गौरव हैं।

संदर्भ

1. 'भरत नाट्यशास्त्र' xiv, 39
2. 'मत्स्यपुराण', 114, 46-8
3. मललशेखर - 'डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स', i, 1050-1
4. रामायण, ii, 10, 37
5. 'महाभारत', xxi, 31, 16
6. वही, iii, 61, 23, 'दक्षिणात्य' शब्द के इस संकुचित अर्थ से 'भरतनाट्यशास्त्र' xxiii, 102 भी परिचित है जहाँ इस आंध्र, पुलिंद और द्रमिल से पृथक् बतलाया गया है।
7. 'ए. इं.' xii, 246, भंडारकर, 'अ. हि. द.' (1928), 247
8. 'यहाँ 'सप्त गोदावरी' का तात्पर्य हो सकता है। पूर्वी गोदावरी जिले के रामचंद्रपुरम् 'तालुक' में 'द्राक्षाराम' में गोदावरी की ये सात धाराएँ हैं। 'ए. इं.' xii, 208

9. 'रामायण', iii, 11, 'रघुवंश' 13, 38
10. इं. ऐं., xiv, 57, ए. इं., 6, 3
11. वही iv, 51
12. वही vi, 6
13. वही v, 56
14. हेस्टिंग्स - 'इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स', vi, 306
15. 'ब्रह्मपुराण', अध्या. 173, 3-4, ए. इं. xii, 216, 'उसने भीमेश्वर की पूजा की जिसके नजदीक से गुजरती गोदावरी जिसकी लहरें मानो उसकी भृकुटियाँ हैं और जो अपनी सात धाराओं से मानो सात स्वरों में गीत गाती हैं।' यहाँ द्राक्षाराम के भीमेश्वर (शिव) के प्रसिद्ध मंदिर का उल्लेख है। इस समय यह मंदिर नदी से 14 मील दूर एक नहर पर है।
16. इं. ऐं. v, 319
17. ए. इं. vi, 319
18. 'बोधा. ध. सू.' i, 17-19, 21, 29, 29-31, 'नाट्यशास्त्र' vi, 25,, xxiii, 102, ह. च., मंगलाचरण छंद 7, मिला. 'काव्यादर्श' i, 34 और 40
19. ए. इं. xiii, 295